❖ ओ३म् ❖

आर्ष-ज्योतिः

श्रीमद् दयानन्द वेदार्ष–महाविद्यालय–न्यास
का
द्विभाषीय मासिक मुखपत्र

फाल्गुन–चैत्रमासः, विक्रम संवत् – २०७०

वर्ष : ६ | अंक ६९ | मार्च २०१४ | मूल्य : ५.०० रुपये

ज्योतिष्कृणोति सूनरी

संरक्षक - संस्थापक
स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती

❖

मुख्य सम्पादक
डॉ. धनञ्जय आर्य (अवैतनिक)

❖

सम्पादक
चन्द्रभूषण आर्य
रवीन्द्र आर्य

❖

कार्यकारी सम्पादक
ब्र. शिवदेव आर्य

❖

व्यवस्थापक
ब्र. अनुदीप आर्य
ब्र. कैलाश आर्य

❖

कार्यालय
श्रीमद्दयानन्द आर्ष ज्योतिर्मठ गुरुकुल
दून वाटिका–२, पौंधा, देहरादून (उत्तराखण्ड)
दूरभाष – ०१३५–२१०२४५१
जंगमवाणी – ०९४११९०६१०४
ई–मेल : arsh.jyoti@yahoo.in
website: www.pranawanand.org

❖

सदस्यता शुल्क
आजीवन – १०००.०० रुपये
वार्षिक – ५०.०० रुपये
एक प्रति – ५ रुपये

विषय–क्रमणिका

विषय	पृष्ठ
सम्पादकीय	२
ईश्वर के सच्चे पुत्र..........	४
ईश दर्शन	७
गृध्नु कुक्कुरः कथा	१०
और वे ईसाई होने से बच गए	११
सर्वोदर–स्वास्थ्यकारक......	१३
आर्य समाज के मन्तव्य : त्रैतवाद	१४
अथ श्री ओमानन्द लहरी	२०

नीमीतीरे सततसुखदे सर्वतो दर्शनीयम्,
पौन्धाग्रामे नगरनिनदाद् दूरमीक्ष्यं मनुष्यैः।
हैमे तुङ्गे शिखरिशिखरे शोभनोपत्यकायाम्,
आर्षज्योतिर्मठगुरुकुलं राजते संसृतौ मे।।

रवीन्द्रकुमारः

न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः

सम्पादक की कलम से...

सृष्टि

आज से १,९६,०८,५३,११४ वर्ष पूर्व वसन्त ऋतु के चैत्र मास की शुक्ल प्रतिपदा को सृष्टि का आरम्भ हुआ था। इस तथ्य को सम्पूर्ण संसार स्वीकार करता है। सृष्टि के पहले क्या था ? इसकी रचना किसने की, कब की ? आदि अनेक प्रश्न है, जिनको हम जितना खोजे उतने ही रहस्य को दिखाते चले जाते है। पुनरपि सर्वप्रथम विचार करते है कि सृष्टि का निर्माण किसने किया ? हम सभी इस सिद्धान्त से अवगत हैं कि किसी भी वस्तु का निर्माणकर्ता जरुर होता है। निर्माणकर्ता पहले होता है और निर्मितवस्तु बाद में होती है। अगर हम बात करें सृष्टि की तो यह जानना बहुत महत्वपूर्ण है कि सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व क्या दशा होती है तो हमें ज्ञात होगा कि सृष्टि सत्व-रज-तम की साम्य अवस्था में होती है और परमपिता परमेश्वर इसके मूल में रहता है। अतः परमेश्वर ने ही प्राणी मात्र के कल्याण के लिए सृष्टि की उत्पति की। इसके लिए हमें वेदों में बहुशः मन्त्र दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे-

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न। यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद।। (ऋग्वेद-१०.१२९.७)

इस ऋग्वेदीय मन्त्र के आधार पर कहा गया है कि जिस परमेश्वर के द्वारा रचने से जो नाना प्रकार का जगत् उत्पन्न हुआ है,वही इस जगत् का धारणकर्ता, संहर्ता व स्वामी है।

इसी तथ्य को हमारे वैदिक वाङ्मय में स्पष्ट रूप से निरूपित किया गया है कि-

चैत्रे मासि जगद् ब्रह्म ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्लपक्षे समग्रे तु सदा सूर्योदये सति।।

अर्थात् चैत्र मास शुक्ल प्रतिपदा के सृष्टि का प्रथम दिन सूर्योदय होने पर परमपिता परमेश्वर ने जगत् का स्रजन किया।

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यैरसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे। अस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे।। (यजु.३१.१७)

अर्थात् परमपिता परमेश्वर ने पृथिवी की उत्पति के लिए जल से सारांश रस को ग्रहण करके, पृथिवी और अग्नि के परमाणुओं को मिला के पृथिवी रची है। इसी प्रकार अग्नि के परमाणु के साथ जल के परमाणुओं को मिलाकर जल को रचा एवं वायु के परमाणुओं के साथ अग्नि के परमाणुओं से वायु रचा है। वैसे ही अपने सामर्थ्य से आकाश को भी रचा है, जो कि सब तत्वों के ठहरने का स्थान है। इस प्रकार परमपिता परमेश्वर ने सूर्य से लेकर पृथ्वी पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् को रचा है।

सृष्टि उत्पत्ति के विषय को अंगीकार कर ऋग्वेद में इसप्रकार निरुपण किया गया है कि -

ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।।
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी।।

अर्थात् प्रदीप्त आत्मिक तप के तेज से ऋत और सत्य नामक सार्वकालिक और सार्वभौमिक नियमों का प्रथम प्रादुर्भाव हुआ। तत्पश्चात् प्रलय की रात्री हो गई। किन्हीं भाष्यकार के मत से यहाँ रात्री शब्द अहोरात्र का उपलक्षण है और वे उस से प्रलय का ग्रहण न करके इसी कल्प की

आदि सृष्टि के ऋतओं सत्य के अनन्तर अहोरात्र का अविर्भाव मानते हैं। फिर मूलप्रकृति में विकृति होकर उसके अन्तरिक्षस्थ समुद्र के प्रकट होने (उसके क्षुब्ध होने) के पश्चात् विश्व के वशीकर्ता विश्वेश्वर ने अहोरात्रों को करते हुए संवत्सर को जन्म दिया। इससे ज्ञात होता है कि – आदि सृष्टि में प्रथम सूर्योदय के समय भी संवत्सर और अहोरात्रों की कल्पना पर ब्रह्म के अनन्त ज्ञान में विद्यमान थी। उनके जन्म देने का यहाँ यहीं अभिप्राय प्रतीत होता है कि वेदोपदेश द्वारा इस संवत्सरारम्भ और उसके मन कल्पना का ज्ञान सर्वप्रथम मन्त्र द्रष्टा ऋषियों को हुआ वा यों कहिये कि – प्रत्येक सृष्टिकल्प के आदि में यथा निमय होता है और उन्होंने यह जान लिया कि – इतने अहोरात्रों के पश्चात् आज के दिन नवसंवत्सर के आरम्भ का नियम है और उसी के अनुसार प्रतिवर्ष संवत्सरारम्भ होकर वर्ष, मास और अहोरात्र की कालगणना संसार में प्रचलित हुई।

भारतीय संवत् के मासों के नाम आकाशीय नक्षत्रों के उदयास्त से सम्बन्ध रखते है। यही बात तिथि अंश (दिनाङ्क) के सम्बन्ध में भी है। वे भी सूर्य–चन्द्र की गति पर आश्रित हैं। विक्रम–संवत् अपने अंग–उपागों के साथ पूर्णत: वैज्ञानिक सत्य पर स्थित है। विक्रम–संवत् विक्रमादित्य के बाद से प्रचलित हुआ।

विक्रम–संवत् सूर्य सिद्धान्त पर आधारित है। वेद–वेदांगमर्मज्ञों के अनुसार सूर्य सिद्धान्त का मान ही सदैव भ्रमहीन एवं सर्वश्रेष्ठ है। सृष्टि संवत् के प्रारम्भ से लेकर आज तक की गणनाएँ की जाए तो सूर्य–सिद्धान्त के अनुसार एक भी दिवस का अन्तर नहीं होगा। सौर मण्डल को ग्रहों, नक्षत्रों आदि की गति एवं स्थिति पर हमारे दिन, महीने और वर्ष पर आधारित हैं।

ऋषिवर देव दयानन्द के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति अनेकों बार होती आ रही है। एक सृष्टि की आयु की यदि कल्पना करे तो हम मनुस्मृति के प्रथम अध्याय के प्रारम्भिक श्लोकों को ध्यान में रखे हुए पायेगे कि एक सृष्टि की आयु १४ मन्वन्तर के बराबर होती है और एक मन्वन्तर ७१ चतुर्युग का होता है। सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग कलियुग ये चार चतुर्युग होते है। सतयुग की आयु १७२८००० वर्ष , त्रेतायुग की आयु १२९६०००, द्वापरयुग की आयु ८६४००० तथा कलियुग की आयु ४३२००० अर्थात् इन चारों की आयु मिलाकर एक चतुर्युग बनता है। इससे एक चतुर्युग की आयु ४,३२०,००० हुई एवं ७१ चतुर्युग मिलकर एक मन्वन्तर बनता है तो एक मन्वन्तर की आयु हुई। ३०६७२०००० इसी आधार पर १४ मन्वन्तर की ४२९४०८०००० आयु होती है। ये आयु एक सृष्टि की है। इस समय सृष्टि की आयु १९६०८५३११४ चल रही है इसका मतलब है कि २३३३२२६८८६ आयु अभी शेष है। इन वर्षो को १२ महिनों व ऋतुओं में विभक्त किया गया। फिर दिन रात का निर्माण हुआ। परमपिता परमेश्वर ने सृष्टि का निर्माण व इसको नियमित रूप से चलाये रखा है। उस परमेश्वर को जानने वाले हम लोग होवें।

इसीलिए वेद हमें बार–बार उपदेश देता है कि–

हिरण्यगर्भ: समवर्त्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्। स दधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।। (ऋग्वेद–१०.१२९.१)

अर्थात् हिरण्यगर्भ जो परमेश्वर है, वही एक सृष्टि के पहिले वर्तमान था, जो इस सब जगत् का स्वामी है और वहीं पृथिवी से लेके सूर्यपर्यन्त सब जगत् को रच के धारण कर रहा है। इसलिए उसी सुखस्वरूप परमेश्वर देव की ही हम लोग उपासना करें, अन्य की नहीं।

इस मास में नव वर्ष के साथ–साथ होलिकोत्सव आदि अनेक पर्वो का शुभागमन हो रहा है। हम सब मिलकर पूर्ण हर्षोल्लास के साथ पर्वो को मनायें और जाने इन पर्वो के मूल उद्देश्य को।

सभी सहृदय पाठकों को भारतीय नववर्ष व होलिकोत्सव आदि की बहुधा शुभाकामनाएँ।

ब्र. शिवदेव आर्य
गुरुकुल–पौन्धा, देहरादून
दूरभाष–८८१०००५०९६

ईश्वर के सच्चे पुत्र व सन्देशवाहक वेदज्ञ महर्षि दयानन्द

-मनमोहन कुमार आर्य

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने जीवन में जो कार्य किया, उससे वह ईश्वर के सच्चे पुत्र व ईश्वर के सन्देशवाहक कहे जा सकते हैं। स्वयं महर्षि दयानन्द की विचारधारा के अनुसार संसार में जन्म लेने वाला हर प्राणी व इस ब्रह्माण्ड में जितनी भी जीवात्मायें हैं, वह सब ईश्वर की पुत्र व पुत्रियों के समान हैं। स्वामी दयानन्द के अनुसार यह सब ईश्वर के पुत्र व पुत्रियां अपने ज्ञान, कर्म व स्वभाव की योग्यताओं के अनुसार कोई ईश्वर के कुछ निकटतम है, कुछ निकट व अधिकांश दूर या बहुत दूर हैं। ईश्वर से निकटता व दूरी का कारण जीवों के अपने जन्म-जन्मान्तरों व वर्तमान जन्म के कर्म हुआ करते हैं। जो जीवात्मा अपने मनुष्य जीवन में अच्छे कर्म करता है, वेदों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है और वेदानुसार जीवन व्यतीत करता है वह ईश्वर के सबसे निकटतम पहुंच जाता है और इसके विपरीत आचरण करने वाले मनुष्यों व पशु आदि योनियों की ईश्वर से दूरी बनी रहती है। इसी प्रकार जो मनुष्य वेद ज्ञान की प्राप्ति में श्रम व पुरूषार्थ करता है और अर्जित ज्ञान का अन्य मनुष्यों में मत-मतान्तर के आग्रह से रहित होकर उनके उपकार व भलाई के लिए प्रचार-प्रसार करता है, वह ईश्वर का सन्देशवाहक होता है। अन्य व्यक्ति कहने को कुछ भी कहें परन्तु वास्तविकता यही है कि जो पूर्व पंक्ति में बताई गई है। जन्म-मरणधर्मा जीवात्माओं के अतिरिक्त ईश्वर का न तो कोई पृथक से पुत्र ही है और न अन्य प्रकार का कोई सन्देशवाहक या ईश्वर व जीव के बीच में किसी प्रकार से मध्यस्थ। आईये, ईश्वर के पुत्र व सन्देशवाहक के विषय में और विचार करते हैं।

ईश्वर के पुत्र की चर्चा करने से पहले ईश्वर के स्वरूप को जान लेते हैं। ईश्वर कैसा है? यह वेद और आर्य समाज के विद्वानों, स्वाध्यायशील, प्रवचन व उपदेश में रूचि रखने वाले सदस्यों को पता है परन्तु ईश्वर के स्वरूप से भारत से बाहर व भारत के भी ९० से ९५ प्रतिशत वा इससे भी अधिक लोग अनभिज्ञ हैं। ऐसा इसलिये है कि उन्हें सत्योपदेश देने वाला कोई नहीं है। आजकल हमारा देश गुरूडम व धर्म-गुरूओं से भरा हुआ है। क्या इन धर्म गुरूओं से इनके अनुयायियों में सद्‌गुरू ईश्वर का सत्य स्वरूप पहुंचता है? हमारा विवेक इसका उत्तर 'न' में देता है। हमारा तो यह मानना है जिस गुरू के पास अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति से अधिक सम्पत्ति है, वह सच्चा गुरू नही हो सकता। कहीं न कहीं धर्म की आड़ में व्यापार किया जा रहा है। ऐसा नहीं है कि यह गुरूजन ईश्वर के बारे में केवल असत्य कथन ही करते हैं। इनके कथनों का कुछ या बड़ा भाग सत्य होता है परन्तु उसमें असत्य के मिले हुए होने से वह विष सम्पृक्त अन्न के समान होता है। यह गुरू अच्छे कार्य भी करते हैं परन्तु इनके सारे कार्य अच्छे कार्यों की श्रेणी में ही आते हों, ऐसी बात नहीं है। यह जो धन अपने भक्तों व अन्य साधनों से प्राप्त करते हैं वह सारा व्यय कहां-कहां होता है, वह मुख्य बात है। यदि वह सारा धन केवल निर्धनों व देशवासियों के केवल व केवल कल्याण पर ही व्यय होता है तो उसकी आलोचना उचित नहीं है, परन्तु विवेक से ज्ञात होता है कि सारे धन का सदुपयोग न होकर व्यक्तिगत कार्यों के लिए भी होता है और एक-एक गुरू ने व्यक्तिगत रूप से इतने साधन व सुविधायें एकत्रित कर लिये हैं कि हमारे धनिक गृहस्थ भी उनसे सुख-सुविधाओं के मामले में पीछे हैं। आस्था का अर्थ यह नहीं होता कि चीनी में नमक व नमक में चीनी की आस्था कर ली जाये। स्कूल का विद्यार्थी अपनी आस्था के अनुसार अपने शिक्षक को शिक्षक न मानकर कुछ और मानता

हो, ऐसी-ऐसी बातें सत्य आस्था नही होती। आस्था यदि सत्य नहीं है तो फिर वह आस्था न होकर अन्धविश्वास होता है। कुछ ऐसा ही तथाकथित धर्म, धार्मिक संस्थाओं व संगठनों में भी होता है। मत-मतान्तरों व भारतवर्षीय मतों के बारे में एक आपत्ति यह भी है कि यह गुरू अपने भक्तों को यह नही बताते कि "वेद" सर्वव्यापक, निराकार, सर्वशक्तिमान तथा सृष्टि को रचने व पालन करने वाले परमात्मा का सृष्टि के आरम्भ में दिया गया ज्ञान है। वेदानुकूल मान्यतायें ही धर्म है और वेदानुकूल जो मान्यता या सिद्धान्त नहीं है वह अकर्तव्य होने से धर्म न होकर अ-धर्म है। यह गुरूजन बतायें भी तो कैसे? पहली हानि तो ऐसा कहने से अपने भक्त व अनुयायी या तो बनेगें ही नहीं या फिर नाममात्र ही बनेगें। दूसरा कारण यह बतायें तब जब यह जानें। इन्होंने तो वेदों का अध्ययन किया ही नही हैं। अतः अज्ञानता व स्वार्थ, यह दो बातें इनमें दृष्टिगोचर होती हैं। चिन्तन व अध्ययन से यह भी तथ्य सामने आता है कि गुरू का काम ईश्वर के बारे में ज्ञान देकर अपने भक्त व अनुयायी को ईश्वर उपासना की विधि सिखाए, आवश्यकता पड़ने पर उनकी शंकाओं का समाधान भी करता रहे। ऐसा करके गुरू का काम समाप्त। भक्त को सारे जीवन अपने विचारों से बांध कर रखना उचित नहीं है। यह एक प्रकार की जालससाजी है। हमने अनेक मत-मतान्तरों व गुरूओं के ६० से ८० वर्ष तक की आयु वाले चेलों को देखा है जो अध्यात्मिक ज्ञान से शून्य होते हैं। इनके भविष्य की चिन्ता गुरू महाराज को नहीं होती है। एक बात यह भी कहनी है कि अधिकांश गुरू पुराणों की बहुतायत में चर्चा करते हैं, यह सप्रमाण जनता को बतायें कि यह पुराण किसने बनायें, क्यों बनाये, कब बनायें, इनकी आवश्यकता क्या थी? वेद और पुराणों में किसका महत्व अधिक है और क्यों है, आदि आदि।

ईश्वर का स्वरूप कैसा है? यह धर्म प्रेमियों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसका उत्तर महर्षि दयानन्द ने चारों वेदों का अध्ययन, मनन, योगाभ्यास, ईश्वर का साक्षात्कार, वेदों का आलोडन व नाना प्रकार से परीक्षा करके दिया है। उनके अनुसार ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वज्ञ, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनादि, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वान्तरयामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। इन गुणों विशेषणों से युक्त ईश्वर ही सारी मनुष्य जाती के लिए उपासनीय है। ईश्वर में असंख्य गुण व कर्म हैं, अतः उसके नाम भी एक नहीं अपितु उसके गुणों की संख्या के बराबर व समान हैं। अजन्मा होने के कारण ईश्वर का कभी जन्म नही होता न हुआ है। जिनका जन्म हुआ है वह ईश्वर नहीं थे। भगवान राम व भगवान कृष्ण महान आत्मायें, महापुरूष व युगपुरूष थे। उनके जीवन में अनेक दैवीय गुण थे जिन्हें हमें अपने जीवन में अपनाना है। दिव्यगुणों को धारण करने वाले हमारे महापुरूष व प्रेरणापुरूष तो हो सकते हैं, परन्तु ईश्वर नहीं। कई बार कुछ असाधारण कार्य करने के लिए इन्हें ईश्वर माना जाता है परन्तु जो कार्य इन्होनें किए वह तो ईश्वर बिना अवतार लिए ही आसानी से कर सकता है। जब वह बिना अवतार लिये प्रकृति के परमाणुओं को इकट्ठा कर उनसे आवश्यकता के अनुरूप नये परमाणु बनाकर सृष्टि अर्थात् सूर्य, पृथिवी, चन्द्र एवं अन्य गृह व उपग्रह, जिनकी संख्या असंख्य है तथा परस्पर की दूरी भी इतनी है कि उसे नापा नहीं जा सकता, बना सकता है तो वह अवतारों द्वारा कहे जाने वाले सभी कार्यो को भी कर सकता है। इसके अतिरिक्त इन सूर्य, पृथिवी आदि पिण्डों का परिमाण इतना है कि जिसका अनुमान लगाना भी कठिन वा असम्भव है। फिर सभी प्राणियों को जन्म देना, समय आने पर उनकी मृत्यु का होना, उन्हें कर्म फल देना आदि कार्य ईश्वर कर सकता है तो फिर वह ईश्वर रावण, कंस व हिरण्यकश्यप आदि को बिना अवतार लिए, यदि मारना आवश्यक है तो, मार भी सकता है।

ईश्वर हमारा माता व पिता दोनों है। इसका

प्रमाण यह है कि उसने हमें जन्म दिया है। महर्षि दयानन्द को भी जन्म देने से ईश्वर उनका माता व पिता दोनों है। इस जन्म के माता-पिता तो सन्तान को जन्म देने के लिए ईश्वर के साधन हैं। यदि ईश्वर माता के गर्भ में सन्तान का निर्माण न करें तो माता-पिता चाह कर भी कुछ नहीं कर सकते। हम जो भी अन्न-फल-दूध-जल-वायु आदि का सेवन करते हैं वह भी ईश्वर ने बनायें हैं। हमारा पोषण करने के कारण भी ईश्वर ही हमारा माता-पिता सिद्ध होता है। वृद्ध, रोगी व अयोग्य हो चुके शरीरों से जीवात्माओं को निकालना और उन सभी जीवात्माओं को उनके कर्मानुसार नया जन्म देने से भी ईश्वर हमारा माता-पिता दोनों ठहरता है। हमारे भौतिक माता-पिता हमें ज्ञान देते हैं अथवा हमें ज्ञान प्राप्ति का साधन व कारण बनते हैं। ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में आदि मनुष्यों व भावी सन्ततियो को ''वेद'' ज्ञान दिया, हममें जो स्वाभाविक ज्ञान है, वह भी उसी का दिया हुआ होने से वह हमारा माता व पिता दोनों है। ईश्वर से हमारा सम्बन्ध गुरू व शिष्य तथा स्वामी व सेवक आदि का भी सिद्ध होता है। माता-पिता सन्तान को आश्रय हेतु घर बना कर देते हैं, परमात्मा ने हमारे व सभी जीवात्माओं के लिए इस सृष्टि व इसके सभी पदार्थो को बनाया है। यह सृष्टि और शरीर ही हमारा मुख्य आश्रय है जो ईश्वर की कृपा व उसकी हमें बहुमुल्य देन है। स्वामी दयानन्द सदाचारी, सच्चे ज्ञानी, सच्चे ईश्वर भक्त, प्राणी मात्र के हितैषी, सच्चे देश भक्त, सच्चे आचार्य व गुरू थे, अतः वह ईश्वर के सच्चे व योग्यतम पुत्र थे।

अब महर्षि दयानन्द सरस्वती के सच्चे सन्देशवाहक होने पर भी विचार कर लेते हैं। स्वामी दयानन्द ने वेदाध्ययन व योगाभ्यास कर ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति के स्वरूप, कर्तव्य-अकर्तव्य, धर्म-अधर्म, बन्धन-मुक्ति, जीवन-मृत्यु, धर्म व मत-मतान्तरों के यथार्थ स्वरूप व उनमें अन्तर व भेद, स्वदेशीय राज व विदेशी राज में भेद, सच्ची ईश्वरोपासना, मूर्तिपूजा-अवतारवाद-मृतक श्राद्ध व फलित ज्योतिष का मिथ्यात्व, गुण-कर्म-स्वभावानुसार वर्ण व्यवस्था, जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था का मिथ्यात्व, विवाह का पूर्ण युवावस्था में गुण-कर्म-स्वभावानुसार होना वेद सम्मत अन्यथा वेदविरूद्ध आदि जीवनोपयोगी आचरणों को यथार्थ रूप में जानकर संसार के उपकार की भावना से उनका प्रचार किया जिससे वह सच्चे ईश्वर के सन्देश वाहक सिद्ध होते हैं। ईश्वर के पैगाम को संसार में फैलाने व मनवाने के कारण लोगों ने उनके प्राण ले लिये और उन्होंने उफ तक भी न की। उनके समान अन्य कोई सन्देशवाहक इतिहास में उपलब्ध नहीं होता। यदि हुए हैं तो उनका कार्य सत्य व सर्वांगीण न होकर एकांगी व सत्यासत्य मिश्रित होने से वह ईश्वर का सीमित सन्देश दे सके और साथ में अहित की बातें भी उसमें सम्मिलित हैं। वेद ज्ञान से शून्य होने के कारण पूर्व के सभी सन्देश वाहक समाज पर ईश्वरेच्छा के अनुरूप प्रभाव नहीं डाल सके। इन सब से भिन्न महर्षि दयानन्द सरस्वती ईश्वर के एक ऐसे सन्देशवाहक हैं जिन्होंने समाज, देश व विश्व को जो दिव्य आध्यात्मिक व भौतिक उन्नति का सन्देश दिया जो उनसे पूर्व अन्यों द्वारा नहीं दिया गया, इस कारण उनका स्थान सर्वोपरि है। हमारा यह मूल्यांकन निष्पक्ष है। इस विषय में हम प्रमाण व तर्कपूर्ण आलोचनाओं का स्वागत करेगें।

हम समझते हैं कि हमने लेख के विषय के अनुरूप अपने विचार प्रस्तुत कर दिये हैं। सत्य का ग्रहण व असत्य के त्याग की भावना से ही हम लेख लिखते हैं। मनुष्य जीवन का उद्देश्य सत्यासत्य का निर्णय कर सत्य को स्वीकार करने के लिए है, वितण्डा या असत्य विचारों पर स्थिर व्यक्तिया व्यक्तिसमूह अपनी व अपने समूह की हानि करते हैं। ऐसा करना मनुष्यपन से बहिः है। इसी भावना से युक्त यह लेख है। ईश्वर करे कि सत्य मान्यतायें संसार के सभी लोगों के हृदय में स्थान पायें।

ईश दर्शन

-यश वर्मा

एक साधक प्रभु से प्रार्थना करता है कि हमारे दुर्गुण और दु:खा दूर कर दो और जो कल्याणकारक गुण-कर्म-स्वाभाव और पदार्थ हैं वह सब हमको प्राप्त कराइए।

प्रभु हमें सब कुछ देने को बैठे हैं परन्तु हमें लेना ही तो नहीं आता। हम अपने पुरुषार्थ द्वारा अपने को पात्र ही नहीं बनाते । जब हम कोई बुरा कार्य करने लगते हैं तो वह हमें भय, शंका, लज्जा के द्वारा जागृत करता है, वह तो हमें अच्छे कर्म करना सिखाता है। परन्तु हम फिर भी बुरे कर्म राग-द्वेष को मन में रखकर करते रहते हैं। एक प्रभु का नाम ही सच्चा है लेकिन प्राणी इतनी सी बात को सारा जीवन समझ नहीं पाता और सांसारिक वस्तुओं को ही बटोरता रह जाता है। यह भी नहीं सोचता कि क्या लेकर आए थे और क्या खोया है? जो आज तुम्हारा है वह कल पराया हो जाएगा। वेदों के ज्ञान से जो यह समझ ले कि यह सब प्रभु की माया है और प्रभु का सदा सिमरन कर ले तो उसके जीवन में फिर आनन्द ही आनन्द है।

एक भक्त अपने प्रभु से प्रार्थना करता है कि हे प्रभु, बस आप ही मेरा सहारा बन जाओं, मैं इस संसार में दर-दर पर ठोकरें खाकर थक चुका हूँ, इस संसार सागर में गोते खा रहा हूँ और डूबता चला जा रहा हूँ। यह संसार मुझे अपनी चकाचौंध से आकृष्ट कर रहा है। हे नाथ! आप मुझे अपनी शरण में ले लो, मेरा किनारा बन जाओ । आपकी कृपा मुझ पर बनी रहे और मुझे आपकी भक्ति के रस की अनुभूति होती रहे, बस आप मुझे अपनी चरण-शरण में ले लो।

एक साधक प्रभु से प्रार्थना करता है कि आप सदैव, हर समय मेरे मन में बसे रहो। मैं हर समय तेरा ही ध्यान करता रहूँ, हर समय तेरा ही सिमरन होता रहे, मेरे मन में तेरे अलावा और कोई ना आए, हर क्षण, हर पल तेरी याद बनी रहे, बस अपने मन को छोड़कर नहीं जाना है। वैसे तो प्रभु एक क्षण भी, कभी भी, किसी से अलग नहीं होते, क्योंकि वह तो सर्वत्र व्यापक हैं, हम ही उससे मुंह फेरे रहते हैं। इसलिए साधक प्रभु को ऐसी प्रार्थना करता है कि आप सदैव मेरे मन में बसे रहो।

हमारा भगवान्, हमारा प्रभु, हमारा ईश्वर, हमारा परमात्मा कैसा अद्‌भुत है, वह सबका दाता है, विधाता है, दु:ख निवारक है, सुखों का दाता है, अमृतदाता है, मुक्तिदाता है, ज्ञानदाता है, दया का भण्डार है, पापों से बचाकर शुभ कर्मो के द्वारा सच्चे रास्ते पर ले जाने वाला है। वह अमृत का, आनन्द का भण्डार है। उसने हमें वेद ज्ञान का रास्ता देकर इतना बड़ा उपकार किया जो हमें मोक्ष तक ले जाता है।

हे प्रभु, मेरा दिल तेरे दर्शन पाने के लिए दीवाना-मस्ताना हुआ जा रहा है। मुझे ज्ञान ही नहीं कि मैं तेरे दर्शन कैसे करूँ। तेरे दर्शन बिना अब मुझे न कोई चैन है न मेरा कोई ठिकाना है। हे प्रभु! आप ही मेरा हाल समझ सकते हो, मैं क्या ब्यां करुँ इस नादान दिल के हाल को, मैं तो दर-दर भटक रहा हूँ। प्रभु, आप तो मेरे अन्तर मन में बैठकर छिप गए और मैं आपको बाहर संसार में ढूंढता रहा। मुझे तो अब वेदों की राह से पता चला कि आप मेरे अन्दर-मेरे हृदयाकाश में बैठे हो। बस मुझे अपनी आत्मा में झंकार आपके दर्शन पाने हैं।

हे प्रभु मैं सदा तेरे नाम का गीत गाता रहूँ। तुझे अपने मस्तक,नैन व कंठ में बसाता हुआ अपनी वाणी के द्वारा तेरे नाम का जप करता रहूं। आप मेरे हृदय मन्दिर में बस जाओ तो मेरा हृदय पुलकित हो जाए। तुझे मैं हर रूप में, हर रंग में देख पाऊँ। श्रद्धा, प्रेम,विश्वास के भावों से तुझे सुबह शाम ध्यायूँ और तेरा नाम गाकर तुझे रिझा लूं, बस आप मेरे नैनों के द्वारा मेरे हृदय में बस जाओ।

यदि मनुष्य राग-द्वेष को छोडकर श्रद्धा व प्रेम के भावों से, हृदय रूपी मन्दिर से, और अपनी रसना से सदैव ओम् नाम का जाप करता रहे तो उसका जीवन सरल हो जाए। हम अपनी वाणी के स्वर से मेवा-मिठाई के समान मीठा बोलने लगें व हृदय शबरी के समान प्रेम का दिया अपने प्रभु के लिए जलता हो, तो हमारा जीवन सफल हो जाए। अपने तन और मन से प्रभु में मग्न होकर नाचे, गाएं और उसे वाणी से भी रिझाऐं, अपने अंतर में प्रभु को देखें, और भक्ति में ऐस मग्न हो जाएं कि समाधि लग जाऐ। और आत्मा को साक्षात्कार हो जाए तो यह जीवन धन्य हो जाए, सफल हो जाए।

हे मानव, उस प्रभु ने इतने सुन्दर संसार की रचना की है लेकिन प्राणी उसको ढंग से जी नहीं पाया। मोह माया के बन्धन में फंसकर इस जीवन को व्यर्थ गवां रहा है। इस संसार की आपाधापी में, प्रभु का प्रेम पाने का प्रयत्न ही नहीं किया और इस जीवन रूपी नैय्य को रौंद कर गवां रहा है। प्रभु का ज्ञान जो अमृत समान है उसे ग्रहण ही नहीं किया। बन्धनों में ऐसा बंध गया कि प्रभु का संग ही नहीं पा सका। हे मानव, ज्ञान रूपी अमृत रस पीकर पुरूषार्थ करता हुआ, प्रभु का ध्यान कर लें और इस जगत में ढंग से जी लें व जीवन के लक्ष्य को पा ले।

हे मानव जब तू अपने मन की डोर अपनी आत्मा की रस्सी अपने प्रभु से बांध लेगा तो प्रसन्नता सदा तेरे पास रहेगी। तुझे बस अपने प्रभु के नाम से एक बार प्रेम हो जाए तो उसकी विशेष आनन्द की कृपा तुझ पर बरसने लगेगी। निष्काम कर्म ही तेरे जीवन का सार हैं और इनके सहारे ही तुझे जीवन का सच्चा किनारा अर्थात् अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त होगा।

हे मानव, क्या तुझे पता है कि क्या वस्तु तेरे काम आएगी। क्या तुझे पता कि तू नित्य है और यह संसारिक पदार्थ अनित्य है। यह सोना,चाँदी, धन, दौलत, महल,चौबारे यहाँ तक कि यह हाड मांस का पिंजरा जिसे हम अपना कहते है, कुछ भी सदा रहने वाला नहीं है, यह मोह माया कोई तुझे पार नहीं लगा सकती जब तेरे शरीर से आत्मा रूपी पक्षी उडकर जाएगा तो उसमें जितनी तूने ओम् नाम की ज्योति जलाई है बस उसका ही प्रकाश रहेगा केवल प्रभु का नाम ही काम आने वाला है।

हे मानव, ध्यान देकर देखों, विचार करो कि प्रभु ने हमें क्या-क्या नहीं दिया अर्थात् जो भी हमारे पास है वह सब प्रभु का दिया हुआ तो है। हमारे कण-कण में प्रेम भाव हो और इस जहान से हम नफरत को मिटाते चलें। जो कुछ हमारे पास है वह सब प्रभु की रहमत है हम उसमें से कुछ अंश बांटते चलें और हर जिन्दगी को रोशन करते चलें तभी हमारा इस दुनिया में आना सफल है। हम दूसरों का सम्मान करे और संतों के संग में बैठकर प्रभु का गुणगान करे। ताकि प्रभु कृपा हम पर सदा रहे।

हे मानव, पाप कर्मो को छोडकर उस प्रभु के नाम का जाप कर ले। जिन्दगी की हर घडी में उस प्रभु को याद कर ले, प्रभु की भक्ति-आनन्द-उत्साह-शान्ति मिलेगी। उसके नाम की लगन लगा ले तो तेरा बेडा पार हो जाएगा। तू अपने हृद्य मन्दिर को साफ कर ले। तेरी आत्मा प्रभु के पास ही बैठी है। प्रभु की भक्ति तो तूने स्वयं करनी है, जिससे तुझे परमधाम अर्थात् मुक्ति अर्थात् मोक्ष मिल जाएगा।

हे मानव, उस प्रभु के नाम का भजन कर ले, ओम् नाम का सिमरन कर ले, सुबह शाम यज्ञ कर ले, उसके नाम का ही ध्यान कर ले, नित्य निरन्तर उसके नाम का जाप कर ले, उसका मुख्य-निज नाम ओम् है बस उसी की भक्ति कर ले व उसको पाकर अपना मानव जीवन सफल बना ले।

हे मानव, तेरे जीवन का लक्ष्य ओम् को अपने प्रभु को प्राप्त करना है, इसके लिए ज्ञान रूपी नौका पर चढ़ कर, साधना करते हुए इस संसार में जो भी बुराइयाँ है, उसमें तुझे फंसना नहीं बल्कि उनसे दूर रहकर तुझे अपने जीवन के लक्ष्य की ओर अग्रसर होना है। इस संसार से, जो कि एक भ्रमजाल है इस से अपना मोह तोड़कर अपने प्रभु से नाता जोडना है तभी तुझे सच्ची खुशी, प्रसन्नता, आनन्द की प्राप्ति होगी। इसके लिए तुझे वेदों का रास्ता

अर्थात् ज्ञान की राह पर चलना होगा और आत्मा व परमात्मा का स्वरूप समझ कर ज्ञान की गंगा में डुबकी लगानी होगी।

यदि सच्चे मन से प्रभु को याद करें तो वह अवश्यम्भावी हमें मिल सकते है। अपने मन को मन्दिर के समान स्वच्छ व निर्मल बना लें, अपनी आत्मा के द्वारा परमात्मा को देखना अर्थात् अनुभव करना प्रारम्भ करे क्योंकि वह इन्द्रियों का विषय ही नहीं है। वह तो केवल आत्मा से ही जाना-समझा देखा व अनुभव किया जा सकता है किसी प्यासे को पानी पिला दो व भूखे को रोटी खिला दो किसी राहगीर को रास्ता दिखा दो तो प्रभु आपको अवश्य दर्शन देंगें जिससे आपको परमशान्ति का अनुभव होगा वेदों से ज्ञान प्राप्ति करके ईश्वर की भक्ति में ध्यान लगाके तो देखो-ईश दर्शन अवश्य होंगे व परमानन्द की प्रप्ति होगी। यदि हम निष्काम कर्म करते हुए यम नियम को व्यवहार मे लाते हुए आसन लगाकर प्राणायाम करें, अपनी इन्द्रियों को अन्दर समेट लें, एकस्थान पर धारण करके ध्यान लगाएँ तो अवश्य समाधि लग जाएगी। उस प्यारे प्रभु के अवश्य दर्शन हो जाएंगे अर्थात् उसकी अनुभूति हो जाएगी।

ओम् के ही ध्यान से, और ध्यान से ही योग तक,
जीवन के अन्तिम लक्ष्य तक, यह ओम् ही पहुँचाएगा।

मन्त्री आर्य समाज,
मॉडल टाऊन, यमुनानगर

उड़ीसा में स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती द्वारा कल्याणाश्रम की पुनर्स्थापना

उड़ीसा के जाजपुर जिले के थालकुड़ी ग्राम में ४६ वर्षो पूर्व स्व. स्वामी ब्रह्मनन्द जी ने तटीय उड़ीसा के ग्रामीण क्षेत्र में वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु **कल्याणाश्रम** नामक संस्था की स्थापना की थी किन्तु स्वामी जी के देहावसान के पश्चात् इस आश्रम की गतिविधियाँ रुक गई थी। ऐसे समय में थालकुड़ी निवासी एवं गुरुकुल के स्नातक श्री विजय आर्य ने अपने आचार्य स्वामी प्रणवानन्द जी एवं आचार्य धनंजय जी को आश्रम की पुनर्स्थापना के लिए आमन्त्रित किया। दिनांक १९-२० फरवरी को स्वामी प्रणवानन्द जी एवं आचार्य धनंजय जी के आश्रम आगमन से क्षेत्रीय जनता में हर्ष की लहर उत्पन्न हुई। क्षेत्रीय ग्रामवासियों द्वारा स्वामी जी, आचार्य जी एवं ब्रह्मचारियों का भव्य स्वागत किया गया। इस अवसर पर ब्र. शिवदेव व विनित आर्य द्वारा चतुर्वेदशतकम् से यज्ञ का आयोजन किया गया। स्वामी जी ने अनेक युवाओं को यज्ञोपवीत देकर नशे से मुक्त हो कल्याण की ओर बढ़ने के लिए संकल्प कराया । स्वामी जी के आशीर्वाद एवं आचार्य प्रेरक उद्बोधन से आश्रम की गतिविधियों को नया आयाम मिला। **-विजय आर्य**

विचार मंथन - परिचर्चा

जैसे कि सभी आर्य बंधु जानते हैं कि विचार टी.वी. द्वारा निर्मित वैदिक कार्यक्रमों का पिछले डेढ़ वर्ष से साप्ताहिक प्रसारण आस्था चैनल पर प्रत्येक शनिवार रात्रि ०९:३० बजे से एवं पिछले छ: मास से दैनिक प्रसारण आस्था भजन चैनल पर हर रोज रात्रि ०८:०० बजे से हो रहा है। हाल ही में विचार टी.वी. द्वारा आर्य जगत् की सर्वप्रथम परिचर्चा 'विचार मंथन' का निर्माण किया गया है, जिसमें ईश्वर का सच्चा स्वरुप, ईश्वर की उपासना पद्धति, ईश्वर को मानने से लाभ आदि विषयों को रोचक टंग से मुख्य सूत्रधार श्रीमती रेणु अग्रवाल एवं श्री आचार्य ज्ञानेश्वर जी के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।इस परिचर्चा का विशेष प्रसारण सुप्रसिद्ध आस्था चैनल पर दिनांक १५ मार्च २०१४ से प्रत्येक शनिवार रात्रि ०९:३० बजे से एवं इसका पुन: प्रसारण आस्था भजन चैनल पर दिनांक १६ मार्च २०१४ से प्रत्येक रविवार रात्रि ०८:०० बजे से होगा। सभी आर्य बंधुओं से विनम्र निवेदन है कि इसका लाभ लेवें एवं अपनी प्रतिक्रिया विचार को info@vichaar.tv पर जरुर भेजें।

गृध्नु कुक्कुरः कथा

एकस्मिन् नगरे एकदा एकः कुक्कुरः निवसति स्म। स बहु बुभुक्षितः आसीत्। स भोजनार्थम् इतस्ततः भ्रमन्नासीत्। तदा स नदीतीरे एकस्मिन् अरण्ये एकम् अस्थिः प्राप्तवान्। तदा सः तत् अस्थिः उत्थाप्य नद्याः सेतौ अचलत्। तदा स स्वकीयं प्रतिबिम्बं सलिले अपश्यत्। तदानीं सः अचिन्तयत् यत् मम पार्श्वे एकमेव अस्थिः अस्ति। अस्य पार्श्वे अपि एकमस्थिः अस्ति। यदि अहमस्य अस्थिः अपि हरामि तर्हि मम पार्श्वे द्वे अस्थिनी भविष्यतः। तदानीं मम उदरपूर्ति सम्यक्तया भविष्यति। एतत् चिन्तयित्वा सः स्वकीयं मुखं उद्घाटयत्। तदैव तस्य मुखात् तत् अस्थिः नद्यामपतत्। तदानीं स तत् अस्थिः उत्थापनाय अनमत् तर्हि स अपि नद्यां अपतत् नद्यां च पतित्वा अम्रियत। अत एव तु उक्तमपि- **अति लोभो न कर्तव्यो लोभं नैव परित्यजेत्।**
अतिलोभाविभूतस्य चक्रं भमति मस्तके।।

ब्र. प्रद्युम्नकुमारः
गुरुकुल-पौन्धास्थम्, देहरादूनम्

शिक्षा : अस्माभिः लोभः न कर्तव्यः।

कन्या गुरुकुल नजीबाबाद की शिक्षा एवं क्रीडा जगत् की उपलब्धियाँ

आर्ष कन्या गुरुकुल विद्यापीठ नजीबाबाद की तीन मेधाविनी छात्राओं कु. कल्पना, कु. उपासना, कु.श्रद्धा (ऋतिका) ने जे.आर.एफ. उत्तीर्ण कर कीर्तिमान बनाया तथा कु. सुशीला, कु. मनीषा, कु. प्रतिज्ञा, कु. इडा शास्त्री ने नेट राष्ट्रिय पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके अतिरिक्त कु. स्नेहा ने गत वर्ष कु. मृणालिनी ने इस वर्ष शास्त्री परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर उत्तराखण्ड संस्कृतविश्वविद्यालय से स्वर्ण पदक प्राप्त किये। खेल जगत् की उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं:- आत्मसुरक्षा की विधा ताईक्वाण्डों में अनेक जनपदीय व राज्यस्तरीय टूर्नामेंटों में भाग लेकर इस गुरुकुल की कन्याएँ अब तक ६० स्वर्ण, ७० रजत, ७२ कांस्य पदक प्राप्त कर चुकी हैं। अभी हाल में ही कु. अपाला, कु. सूर्या, कु. संयोगिता, कु. रचना ने स्वर्ण पदक तथा कु. माधवी, कु. सुलभा, कु. कल्पना ने कांस्य पदक प्राप्त कर गुरुकुल की श्रीवृद्धि की है। यह प्रतियोगिता फैडरेशन ऑल इण्डिया ताईक्वाण्डों चैम्पियनशिप के तत्त्वावधान में चण्डीगढ़ में सम्पन्न हुई। विदित हो कि विश्व भेषज कोष निर्माण के प्रसंग में गुरुकुल में पधारे भारत स्वाभिमान ट्रस्ट पजंजलि योगपीठ के आचार्य बालकृष्ण जी ने विजयी कन्याओं को पदक भेंट किये और पतंजलि योगपीठ की ओर से ताईक्वाण्डों की राष्ट्रिय प्रतियोगिता में स्वर्ण पदक प्राप्त करने वाली छात्राओं को पाँच-पाँच हजार, कांस्य पदक विजेता छात्राओं में प्रत्येक को तीन हजार एक सौ तथा गुरुकुल की सभी छात्राओं को च्यवनप्राश आदि पतंजलि के उत्पादों को देकर पुरस्कृत किया।

-आचार्य डॉ. प्रियम्बदा वेदभारती

दयानन्द विचार माला

-शिवदेव आर्य

- छल और कपट उसको कहते हैं तो भीतर और बाहर और दूसरे को मोह में डाल और दूसरे की हानि पर ध्यान न देकर स्वप्रयोजन सिद्ध करना।
- बड़ों को मान्य दे उन के सामने उठ कर जा कर उच्चासन पर बैठावे, प्रथम 'नमस्ते' करे। उनके सामने उत्तमासन पर न बैठे।
- सभा में वैसे स्थान में बैठे जैसी अपनी योग्यता हो और दूसरा कोई न उठावे। विरोध किसी से न करे।

-सत्यार्थ-प्रकाश, द्वितीयसमुल्लास

और वे ईसाई होने से बच गए

-डॉ. विवेक आर्य

सत्य घटना पर आधारित.....

लुधियाना पंजाब के सबसे बड़े शहरों में से एक हैं। डॉ. मुमुक्षु आर्य शहर के जाने माने हृदय रोग विशेषज्ञ के रूप में प्रसिद्ध थे। आपकी धार्मिक विचारधारा स्वामी दयानंद से प्रभावित थी, वेद को आप शाश्वत ज्ञान मानते थे और धर्म के नाम से प्रचारित किसी भी अन्धविश्वास से आप कोसों दूर थे। एक शाम क्लीनिक बंद कर आप घर वापिस जा रहे थे तो एक चौराहे पर आपने भारी भीड़ देखी। आपने देखा की एक ईसाई व्यक्ति मंच से जोर जोर से चिल्ला कर कह रहा था कि जिस जिस को अपनी वर्षो पुरानी कोई भी बिमारी को तुरंत ठीक करना हो तो प्रभु यीशु की शरण में आओ क्योंकि वही एक हैं जिनको पुकारने से सबके रोग,सबकी परेशनियाँ दूर हो जाती हैं। वही हैं जो चमत्कार दिखा कर अंधों को आंखें देते हैं, अपाहिजों को चलने लायक बना देते है, आओ! प्रभु यीशु की शरण में आओ, तुम्हारा कल्याण होगा, तुम पर उपकार होगा।

एक चिकित्सक होने के नाते डॉ. मुमुक्षु की जिज्ञासा ज्यादा ही बढ़ गयी। उन्होंने इस तमाशे का बारीकी से जाँच करने का निर्णय किया। मंच पर उपस्थित वह व्यक्ति अब जोर-जोर से प्रार्थना करने लग गया। उसका कहना था कि- प्रार्थना के पश्चात वो व्यक्ति मंच पर आये जिनकी बीमारी दूर हो गयी हैं। मंच के बगल में ५-७ पुरुष और महिलाये इकट्ठे हो गए जो मंच पर यह कहने वाले थे की उनका क्या क्या रोग दूर हो गया हैं। डॉ. मुमुक्षु भी मौका देखकर उनके साथ जाकर खड़े हो गए और उनमें से एक के कान में खुसर फुसर कर बोले तुम्हे मंच पर बोलने के लिए कितने रूपये दिए गए हैं। वह बोला कि एक हजार और उसने डॉ. मुमुक्षु से पुछा और तुम्हे कितने मिले हैं। डॉ. मुमुक्षु बोले की मुझे भी एक हजार मिले हैं। एक एक कर सभी मंच पर जाकर अपनी अपनी बिमारियों का बखान करने लगे और यह दावा करने लगे की प्रभु यीशु की प्रार्थना से हमारी सभी बीमारी ठीक हो गयी हैं। जब डॉ. मुमुक्षु की बारी आई तो उन्होंने मंच पर जाकर माइक हाथ में लेकर तुरंत ही यह कहा की जो जो व्यक्ति यहाँ पर मुझसे पहले आकर यह बोल कर गया हैं कि मेरी बीमारी ठीक हो गयी हैं उन उनको यह सब बोलने के लिए एक-एक हजार रूपये दिए गए हैं।

मंच पर उपस्थित सभी लोग एक दम से भोचक्के रह गए और पूरी भीड़ ने जोर से तालियाँ बजा डाली। डॉ.मुमुक्षु से माइक छिनने की कोशिश की जाने लगी पर वे मंच पर घूमते घूमते इस तमाशे कि पोल खोलने लग गये। शहर के जाने माने चिकित्सक होने के नाते लोगों पर उनके सत्य के मंडन और पाखंड के खंडन का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। अंत में उन्होंने यह कह कर अपना कथन समाप्त किया कि यह सब धर्म भीड़ हिन्दुओं को ईसाई बनाने का एक कुत्सित तरीका हैं। एक तरफ तो ईसाई समाज अपने आपको इतना पढ़ा लिखा प्रदर्शित करता हैं और दूसरी तरफ इस प्रकार के ढ़ोंग रचता हैं यह अत्यंत खेदजनक बात हैं।

इस घटना से डॉ. मुमुक्षु को शहर के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति मिलने आये और उन्हें इस वीरता पूर्ण कार्य के लिए धन्यवाद दिया।

आज देश में जहाँ कहीं इस प्रकार की प्रार्थना से चंगाई का ढोंग आप देखे तो इस पाखंड का खंडन अवश्य करे और हिन्दू जाति की रक्षा करें।

दिल्ली

वार्षिकोत्सव एवं स्थापना समारोह

आप सभी को यह जानकर अत्यन्त हर्ष होगा कि मसूरी की तलहटी में स्थित, प्राकृतिक सौन्दर्य का अनुपम स्थल **गुरुकुल पौन्धा (देहरादून)** का वार्षिकोत्सव एवं स्थापना समारोह ३०, ३१ **मई और १ जून** २०१४ **शुक्र, शनि एवं रवि** को भव्य सम्मेलनों के साथ मनाया जा रहा है जिसकी पूर्णाहूति रविवार को होगी। इस कार्यक्रम में प्रसिद्ध वैदिक उपदेशक एवं भजनोपदेशक पधार रहे हैं जिनके अनुपम सन्देश आपको सुनने को मिलेंगे।

इस अवसर पर आपको गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के भाषण, भजन, कविताओं को सुनने एवं शारीरिक प्रदर्शन देखने का अवसर प्राप्त होगा।

आप सबसे विनम्र अनुग्रह है कि आप सभी अपने परिवार एवं इष्ट मित्रों सहित अधिक से अधिक संख्या में उपस्थित होकर धर्म लाभ उठायें।

सम्पर्क सूत्र : ०१३५-२१०२४५१,०९४११९०६१०४,०९४११३१०५३०

ई-मेल : arsh.jyoti@yahoo.in / Website : www.pranwanand.org

शुभकामनाएँ

वैदिक परम्परा एवं भारतीय संस्कृति के उद्वाहक चैत्र शुक्ल प्रतिपदा पर प्रारम्भ होने वाले नवसंवत्सर २०७१ व आर्यसमाज स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में **आर्ष ज्योतिः** परिवार की ओर से आप सबको हार्दिक शुभकामनाएँ ।

उपलक्ष्य के पीछे कभी विचलित न नव जीवन लक्ष्य हो,
जब तक रहें ये प्राण तन में पुण्य का ही पक्ष हो।
कर्तव्य एक न एक पावन नित्य नेत्र समक्ष हो,
सम्पत्ति और विपत्ति में विचलित कदापि न वक्ष हो।

उस वेद के उपदेश का सर्वत्र ही प्रस्ताव हो,
सौहार्द और मतैक्य हो अविरुद्ध मन का भाव हो।
सब इष्ट फल पावें परस्पर प्रेम रखकर सर्वथा,
निज यज्ञ-भाग समानता से देव लेते हैं यथा।।

सर्वोदर-स्वास्थ्यकारक-हिंग्वष्टकचूर्ण

- ले.डॉ. सत्येन्द्र कुमार आर्य....

पत्रिका के सुहृद् पाठकगण अब तक इस 'स्वस्थवृत्तम्' लेखमाला में एक वनौषधि विवरण को पढ़ते आये हैं,अब कुछ चिकित्सा के लिये उपयोगी, सरल और प्रसिद्ध योगों का भी वर्णन प्रस्तुत किया जायगा। यह चूर्ण बहुजनहिताय और बहुजनसुखाय बहुत उपयोगी है। इसको अनेक ग्रन्थकारों ने थोडे से अन्तर के साथ वर्णन किया है। हींग को सम मात्रा में-१/८ की मात्रामें और ७/८ की मात्रामे लेने का विधान किया है। यह भेद सम्भवत: देश, काल, परिस्थिति एवं जलवायु को ध्यान में रखकर किया होगा।

चूर्ण के घटक द्रव्य-सोंठ, पीपल, मरिच, अजमोद=(अजवायिन), सेंधा नमक, श्वेत जीरा, काला जीरा ये सात द्रव्य बराबर मात्रा में लेकर इन सातों का आठवाँ भाग हींग।

विधि-सब द्रव्यों को साफ सुथरा लेकर तोलकर सातों द्रव्यों का आठवां भाग हींग अर्थात् ७०/८० अर्थात् ८७५ ग्राम लेकर घी में भूनकर पीस लें शेष ७०४ ग्राम वस्तुओं का चूर्ण करके सबको एकत्र मिलाकर सुरक्षित कर लें और विधिवत् प्रयोग करें।

मात्रा एवं प्रयोगविधि-भोजन के समय थाली में १-३ ग्राम चूर्ण लेकर उसमें घी मिलाकर भोजन के पहले और दूसरे कौरे में खा जायें। भारतीय लोग प्राय: दो बार भोजन करते हैं तो इस चूर्ण की मात्रा भी दिन मे दो बार हुई।

उपयोग और लाभ-जब भूख ठीक से न लगती हो, या सर्वथा न लगती हो, ऐसे में इस चूर्ण के सेवन से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। जब वायुविकार का उपद्रव पेट में हाने लगे, वायु का गोला उदर में बनने लगे तो इस चूर्ण के विधिवत् सेवन करने से वातगुल्म नष्ट हो जाता है।

इस चूर्ण का सेवन बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी निरापद और निर्विघ्न सेवन कर सकते हैं और लाभान्वित हो सकते हैं। इसके सभी घटक द्रव्य रसोई में नित्य उपयोग में आने वाले हैं।

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे।
समधरणधृतानामष्टमो हिंगुभाग:।।
प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णकोऽयम्।
जनयति जठराग्निं वातगुल्मं निहन्ति।।

-गुरुकुल पौन्धा, देहरादून

विद्या की नगरी में गुरुकुल पौन्धा के छात्रों का प्रदर्शन

उत्तराखण्ड संस्कृत अकादमी (उत्तराखण्ड सरकार) द्वारा राज्यस्तरीय प्रतिस्पर्धा का आयोजन अकादमी के सभागार में १० एवं ११ फरवरी २०१४ को हुआ। इसमें तीन प्रतियोगिताओं को समाहित किया गया, जो क्रमश: सूत्रान्त्याक्षरी, संस्कृतवाङ्मयज्ञान एवं यजुर्वेद मन्त्रात्यक्षरी का आयोजन हुआ। प्रतिस्पर्धा में अनेक महाविद्यालयों से छात्र-छात्राएँ उपस्थित रहे। सूत्रान्त्याक्षरी में ब्र. गुरुमित आर्य ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया, संस्कृतवाङ्मयज्ञान प्रतियोगिता में ब्र. सत्यकाम आर्य ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया एवं यजुर्वेद मन्त्रात्यक्षरी में ब्र. ओमप्रकाश आर्य ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। इस प्रतिस्पर्धा में गुरुकुल के तीन छात्रों ने भाग लिया तथा तीनों ही छात्र विजयी रहे। इस अवसर पर संस्था संस्थापक स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती, आचार्य धनंजय, आचार्य चन्द्रभूषण, आचार्य यज्ञवीर आदि ने छात्रों को साधुवाद दिया।

-शिवदेव आर्य

आर्य समाज के मन्तव्य : त्रैतवाद

(स्वामी देवव्रत सरस्वती के कतिपय प्रवचनों का संग्रह)

संकलनकर्ता-आचार्य डॉ. धनञ्जय

आर्य समाजः- श्रेष्ठ व्यक्ति का नाम आर्य है। जिसके कर्म अच्छे हों उसे श्रेष्ठ कहते हैं। सभ्य मनुष्यों के संगठन को समाज कहते हैं। संगठन अज्ञान, अन्याय, अभाव को दूर करने के लिए बनाया जाता है। आर्य समाज एक प्रजातान्त्रिक संगठन है जिसकी स्थापना महर्षि दयानन्द जी ने मुम्बई में सन् १८५७ ई० में की थी।

उद्देश्यः- संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

आर्य समाज के मन्तव्य : त्रैतवाद -आर्य समाज ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीनों को अनादि मानता है। किसी वस्तु के निर्माण में तीन कारणों का होना आवश्यक है। १.उपादान कारण, २. निमित्त कारण, ३.साधारण कारण

१.उपादान कारणः-वस्तु के निर्माण में जो मूल तत्व है उसे उपादान कारण कहते हैं। जैसे घड़े का निर्माण में मिट्टी और आभूषण में सोना-चान्दी आदि उपादान कारण हैं।

२.निमित्त कारणः-जिसके बनाने से कुछ बने, न बनाने से न बने, प्रकारान्तर से दूसरे को बना दे उसे निमित्त कारण कहते हैं। इसके दो भेद हैं-

क. मुख्य निमित्त कारण- परमात्मा

ख. साधारण निमित्त कारण - आत्मा

३.साधारण कारणः-निमित्त और उपादान कारण के अतिरिक्त अन्य अपेक्षित कारण साधारण कारण कहलाते हैं। जैसे घड़े के निर्माण में मिट्टी उपादान कारण कुम्भकार निमित्त कारण और दण्ड, चक्रादि साधारण कारण है। वैसे ही सृष्टि निर्माण में प्रकृति साधारण कारण, ईश्वर निमित्त कारण और दिशा, आकाशादि साधारण कारण हैं।

उपादान कारण प्रकृति :- प्रकृति जगत् का उपादान कारण है जिससे कार्य जगत् उत्पन्न होता है। उपादान कारण में निम्न बातें पाई जाती हैं-

१. उपादान कारण परिणामी, नित्य और जड़ होता है। चेतन कभी भी उपादान कारण नहीं हो सकता है।

२. उपादान कारण के गुण कार्य में किसी न किसी रूप में आते हैं।

३. उपादान कारण से ही कार्य बनता है और उसी में लीन भी होता है।

४. उपादान कारण असत्य, मिथ्या और अमान रूप नहीं होता।

५. उपादान बनाने से कार्य रूप में बनता है और न बनाने से नहीं बनता।

ये सभी बातें प्रकृति में पाई जाती हैं अतः प्रकृति जगत् का उपादान कारण है। प्रकृति त्रिगुणात्मक सत्त्व रजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः सांख्य दर्शन, जड़ और अनादि है। क्योंकि कारण का कारण नही होता। प्रकृति के अनादि होने में हेतु

१.अभाव से भाव उत्पन्न नहीं होता। जगत् भाव रूप है अतः उसका कारण भी भाव रूप होना चाहिये और वह प्रकृति है।

२. जगत् कार्य रूप होने से उसका कारण प्रकृति ही उपादान कारण सिद्ध होती है।

३. कार्य अपने उपादान कारण में विद्यमान रहता है। जगत् कार्य है और उसकी विद्यमानता प्रकृति में है।

४. कार्य अपने कारण में लय को प्राप्त होता है अतः

जगत् का उपादान कारण प्रकृति होना ही चाहिये।

५. कोई कार्य तभी सम्पन्न होता है जब उसके कारण में कार्य रूप में परिणत होने की शक्ति हो अत: प्रकृति रूपी कारण में जगत् रूप में परिणत होने की शक्ति विद्यमान रहती है।

६. किसी भी वस्तु का सर्वथा विनाश नहीं होता वह सूक्ष्म रूप हो अपने कारण में विलीन हो जाती है। प्रलयावस्था में जगत् अपने कारण प्रकृति में विद्यमान रहता है।

७. बीज के होने पर उससे अंकुर का प्रादुर्भाव होता है। प्रकृति ही जगत का मूल कारण होने से उसका अनादि होना सिद्ध होता है।

प्रमाण-**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषष्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यवश्नन्यो अभि चाकशीति।। (ऋ० १/१६४/२०)**

(द्वा) ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा:) चेतनता और पालनादि गुणों से कुछ सदृश (सयुजा) व्याप्य-व्यापक भाव से संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रता युक्त (समानम्) वैसा ही (वृक्षम्) प्रलय में छिन्न भिन्न होने वाले संसार रूप वृक्ष का (परिषष्वजाते) आश्रय लिये हुए हैं। (तयोरन्य:) इनमें से जो जीव है वह इस वृक्ष रूपी संसार में पाप-पुण्य रूप फलों को (स्वाद्वत्ति) स्वाद लेकर खा रहा है, भोग रहा है ओर दूसरा परमात्मा (अनश्नन्) न भोगता हुआ (अभि चाकशीति) चारों ओर विराजमान हो उसे देख रहा है।

अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः। अजो हयेको जुषमाणोऽनुशेते जहाव्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।। (श्वेता०उप० ४१५)

प्रकृति, जीव और परमात्मा ये तीनों अज अर्थात् इनका जन्म कभी नहीं होता। प्रकृति रजोगुणयुक्त, सत्त्वगुणात्मक और कृष्ण अर्थात् तमोगुणी होने से उससे विभिन्न पदार्थो की उत्पत्ति होती है। इसे अजन्मा जीवात्मा भोग रहा है और दूसरी अविनाशी, जन्म मरण से रहित ईश्वर जीवों द्वारा भोग्य होने के कारण इसका परित्याग अर्थात् भोग से पृथक है।

सृष्टि की उत्पत्ति में मूलतत्त्वों की गणना :-

१. एकत्ववाद (Monism) एकत्ववाद का सिद्धान्त कहता है कि जड़ या चेतन तत्त्व से ही सृष्टि का निर्माण हुआ है। जड़ से सृष्टि का निर्माण हुआ है। जड़ से सृष्टि की उत्पत्ति चार्वाक और वर्तमान भौतिक वादियों (वैज्ञानिकों) की है।

चेतन तत्व से ही सृष्टि का निर्माण हुआ यह मान्यता शंकराचार्य, यहूदी, ईसाई, मुसलमानों की है। इनका कहना है कि एक ईश्वर ही अनादि तत्व है जिसने अभाव से अर्थात् अपनी माया से जीव तथा जगत् की उत्पत्ति की है।

२. द्वैतवाद (Dualism) द्वैतवादियों का कहना है कि मूलभूत सत्ता दो हैं चेतन जीव तथा भौतिक द्रव्य (Matter) प्रकृति। यह धारणा सांख्य दर्शन की मानी जाती है।

३. त्रैतवाद (Triadism) इस सिद्धान्त को मानने वाले ईश्वर, जीव, प्रकृति को मूलभूत सत्ता मानते हैं रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य और महर्षि दयानन्द जी इसी सिद्धान्त को मानने वाले थे।

समीक्षा :-एकत्ववादियों का मानना है कि भौतिक द्रव्य से ही सृष्टि का निर्माण हुआ है। जैसे दही और गोबर को मिला देने से उसमें कुछ समय पश्चात् बिच्छू उत्पन्न हो जाते हैं। इसी भांति मदिरा बनाने के लिये कुछ पदार्थो को मिला देने से कालान्तर में उनमें गति उत्पन्न हो जाती है। वर्तमान समय में बैटरी का निर्माण भी तेजाब और जस्ता की प्लेट का संयोग होने पर विद्युत प्रवाहित होने लगती है। इसी भांति जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी के तत्वों का संयोग होने से सृष्टि का निर्माण स्वयमेव होता है और इन तत्वों के क्षीण हो जाने पर प्रलय भी अपने आप होती है। सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय का यह क्रम अनादि काल से चला आ रहा है।

समाधान :-यदि गोबर या दही को सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से देखें तो उसमें सूक्ष्म जीव पहले से विद्यमान दिखाई देंगे जो उचित वातावरण में बिच्छू के शरीर में परिणत हो गये। दही और गोबर को मिलाकर अनुकूल वातावरण में रखने वाली चेतन सत्ता का होना आवश्यक है।

यदि सृष्टि का बनना और बिगड़ना स्वभाव से माने तो स्वभाव से ही उत्पन्न पदार्थ का विनाश नहीं होगा। यदि विनाश को स्वाभाविक माने तो फिर उत्पत्ति नहीं होगी। दोनों अर्थात् उत्पत्ति और विनाश यदि स्वाभाविक माने जायें तो अनवस्था दोष आ जायेगा।

आज का विज्ञान यह मानता है कि सृष्टि की अन्तिम सत्ता आत्मा-परमात्मा न होकर ऊर्जा अर्थात् वे सूक्ष्म विद्युत तरंगे हैं जो मेंढक की गति से प्रवाहित हो रही है। ये तरंगें तीन प्रकार के विद्युत कणों से बनी हैं जिन्हें इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन कहा जाता है।

समाधान- यदि विद्युत तरंगों का प्रवाह विच्छेद युक्त है अर्थात् मेंढक की भांति कुदान मार-मार कर प्रवाहित होता है और फिर बन्द हो जाता है तो उसके बन्द या विच्छेद होने पर उसे दोबारा गति किससे प्राप्त होती है। जड़ पदार्थ अपने आप गतिशील नहीं हो सकता।

जिन परमाणुओं से सृष्टि का निर्माण होता है वहां पर भी व्यवस्था है। प्रत्येक परमाणु के केन्द्र में न्यूट्रॉन होता है और उसके समीप ही प्रोटॉन के कण रहते हैं। जितने प्रोटॉन के कण होते हैं, उतने ही इलेक्ट्रॉनों की संख्या होती है। इलेक्ट्रॉन विपरीत दिशा में गतिशील रहते हैं। उनमें गति एवं निश्चित अनुपात में प्रोटॉन, इलेक्ट्रॉन की विद्यमानता किसी दूसरी सत्ता द्वारा ही सम्भव है। जड़ में स्वयं यह गुण नही आ सकता।

'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' परमाणु सौरमण्डल की एक छोटी इकाई का ही नमूना है। सूर्य के चारों ओर हमारी पृथ्वी सहित दूसरे ग्रह-उपग्रह घूम रहे हैं। सूर्य भी अपनी कक्षा में गति कर रहा है। हमारी आकाश गंगा में सूर्य सदृश लाखों नक्षत्र एवं लोक लोकान्तर हैं जो अपनी-अपनी कक्षा में भ्रमण कर रहे हैं। ऐसी करोड़ों आकाशगंगाओं देखी जा चुकी हैं। इनहें कौन गति दे रहा है इसका उत्तर विज्ञान के पास नहीं है।

शंकर का अद्वैतवाद :- शंकराचार्य का मत है कि सृष्टि की मूल सत्ता केवल एक चेतन ईश्वर है। ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या। जैसे मकड़ी अपने में से ही जाला बुनने के लिए तन्तु निकालती है और फिर उसे समेट भी लेती है वैसे ही ब्रह्म अपनी माया से सृष्टि की उत्पत्ति कर अपने में ही समेट लेता है। माया ब्रह्म की शक्ति है जो न सत् न ही असत् अर्थात अनिर्वचनीय है। जैसे अज्ञान के कारण रज्जु में सर्प और सीप में रजत का भ्रम हो जाता है वैसे ही यह जगत् स्वप्न के समान मिथ्या है। जैसे एक ही मूर्ख का प्रतिबिम्ब सहस्रों दर्पणों में अवभाषित हो अनेक रूपों में दिखाई देता है वैसे ही एक ब्रह्म अनेक अन्तः करणों से युक्त हो बहुत दिखाई दे रहा है।

समाधान :-जब अकेला ब्रह्म ही था तो उससे यह जड़ संसार कैसे उत्पन्न हो गया। यदि यह ब्रह्म की माया है तो फिर ब्रह्म और माया दो हो गये। यदि माया सत् है तो एकत्व का सिद्धान्त नहीं टिकता असत् मानने पर उसकी प्रतीति कैसे होगी। यदि उसे सत् असत् दोनों ही मान लिया जाये तो परस्पर विरोध उत्पन्न हो जायेगा। उसे सत्असत से भिन्न अनिर्वचनीय मानना निरर्थक है। मकड़ी और उसका सूत्र निकालना दो हो गये। क्योंकि सूत्र तो मकड़ी के शरीर से निकलता है और शरीर का निर्माण प्रकृति के पदार्थों से होता है। सीप में रजत और रज्जु में सर्प का भ्रम होना भी द्वैत को सिद्ध करता है। जिसका भ्रम हो रहा है वह वस्तु दूसरी है। ऐसे ही स्वप्न भी देखे सुनें विषयों से सम्बन्धित होता है और जागने पर उन पदार्थों की सत्ता समाप्त हो जाती है परन्तु संसार तो दिखाई दे रहा है।

यदि ब्रह्म अपने में से ही जगत् का निर्माण करता है तो विकार वाला हो गया और उससे निर्मित

जगत् भी चेतन स्वरूप वाला होना चाहिये। जो यह कहते हैं कि खुदा ने कुन कहा और सृष्टि रचना हो गई सो अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं हो सकती। कार्य से पहले उसके कारण का होना आवश्यक है।

द्वैतवाद :- यह पहले कहा जा चुका है कि अकेला जड़ या चेतन सृष्टि की उत्पत्ति करने में समर्थ नहीं हो सकता। जब तक चेतन उसका निमित्त कारण नहीं बने तब तक जड़ स्वयं बन या बिगड़ नहीं सकता। इसलिए सृष्टि उत्पत्ति के लिये दो सत्ताओं का मानना अनिवार्य है। सांख्य दर्शन में इसे प्रकृति पुरूष कहां है ओर गीता ने क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ। शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ क्षेत्र है और पुरूष इनका स्वामी।

सांख्य दर्शन के प्रमाण :-

संहत परार्थत्वात्।।१।१४०।।

संहत शरीरादि पृथिव्यादि विभिन्न तत्वों के योग से निर्मित हैं ओर संघात दूसरों के लिए होता है। जैसे खट्वादि पुरूष के लिए निर्मित किये जाते हैं वैसे ही जीवात्मा के लिये यह शरीर प्राप्त हुआ है ओर वह इससे भिन्न है।

अधिष्ठानात्।।१।१४२।।

रथ तभी चलता है जब इसका चलाने वाला हो। शरीर भी एक रथ है। (आत्मानं रथं विद्धि शरीरं रथमेव च) जिसका अधिष्ठाता चेतन आत्मा है।

भोक्तृभावात् ।।१।१४३।।

संसार के सब विषय भोग्य और पुरूष उनका भोक्ता है।

कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च।।१।१४४।।

सब जीवों की मोक्ष अर्थात् सांसारिक दु:खों से छूटने की प्रकृति देखी जाती है। बन्धन में कोई नहीं रहना चाहता। यदि आत्मा नहीं है तो दु:ख से छूटना कौन चाहता है?

षष्ठी व्यपदेशादपि सांख्य ६/३

मेरा शरीर, मेरा मन इत्यादि व्यवहार से शरीर से भिन्न आत्मा सिद्ध होता है।

अस्त्यात्मा नास्तित्व साधनाभावात् (सांख्य ६/१)

आत्मा है क्योंकि उसके न होने में कोई प्रमाण नहीं है। जो मैं कहता हुँ वह शरीर से पृथक चैतन्य स्वरूप आत्मा ही जानना चाहिए।

अन्य प्रमाण :-

१. कोई भी मरना नहीं चाहता। यह मरने से बचने वाला चेतन आत्मा ही है जिसने अनेक जन्मों में मृत्यु दु:ख का अनुभव किया है।

२. यदि जीव का पृथक अस्तित्व न माना जाये तो जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति आदि अवस्थाओं का अभाव होगा। ये अवस्थायें होती है अत: जीव का अस्तित्व भी सिद्ध है।

३. इच्छा, द्वेष, प्रधान, ज्ञान आदि से भी जीव प्रकृति से भिन्न सिद्ध होता है।

४. जड़ का प्रकाशक, जड़ से भिन्न होता है, शरीर, इन्द्रिय, मन-बुद्धि को प्रकाश गति देने वाला जीव इससे भिन्न है।

बालादेकर्मणायस्कमुतैकं नैव दृश्यते।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया।।
(अथर्व० १०/८/२५)

एक (जीवात्मा) बाल से भी अधिक सूक्ष्म है और एक (प्रकृति) मानो दीखती ही नहीं। उससे भी अधिक सूक्ष्म और व्यापक जो परमात्मा है वही मेरा प्रिय है।

आत्मा का परिणामः-

बालाग्र शत भागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते।।
(श्वेता० ५/९)

बाल के अगले भाग के सौ टुकड़े कर दिये जायें, उसके सौवें भाग के भी सौ हिस्से कर दिये जायें, उस सूक्ष्म भाग के समान जीव का प्रमाण दें किन्तु उसमें सामर्थ्य बहुत है। जीव स्व, सूक्ष्म पदार्थ है जो एक परमाणु में भी रह सकता है। उसकी शक्तियाँ शरीर में प्राण, बिजली और नाड़ी आदि के साथ संयुक्त होकर रहती है, उनसे सब शरीर का वर्तमान जानता है।

(सत्यार्थ प्रकाश द्वादश समुल्लास)

प्रश्न : जीव शरीर में विभु है या परिच्छिन्न?

उत्तर : परिच्छिन्न। जो विभु होता तो जागृत, स्वप्न सुषुप्ति, मरण, जन्म, संयोग, वियोग, जाना, आना कभी नहीं हो सकता। इसलिए जीव का स्वरूप अल्पज्ञ, अल्प अर्थात् सूक्ष्म है। सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास।

आत्मा के गुण, कर्म स्वभाव

प्रश्न : जीव और ईश्वर का स्वरूप, गुण कर्म और स्वभाव कैसा है?

उत्तर : दोनों चेतन स्वरूप है। स्वभाव दोनों का पवित्र, अविनाशी और धार्मिकता आदि हैं। परन्तु परमेश्वर के सृष्टि उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय सबको नियम में रखना, जीवों को पाप-पुण्य रूप फलों को देना आदि धर्मयुक्त कर्म हैं और जीव के सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, शिल्प विद्या आदि अच्छे-बुरे कर्म हैं।

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगभूति
(न्याय द० १/१/१०)

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवन मनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुख दुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नश्चात्मनो लिंगानि।।
(वैशेषिक दर्शन ३/२/४)

दोनों सूत्रों में (इच्छा) पदार्थो के प्राप्ति की अभिलाषा (द्वेष) दुःखादि की अनिच्छा, वैर, (प्रयत्न), पुरूषार्थ, बल, (सुख) आनन्द (दुःख) विलाप, अप्रसन्नता (ज्ञान) विवेक, पहिचानना। ये तुल्य हैं परन्तु वैशेषिक में (प्राण) को बाहर निकालना (अपान) प्राण को बाहर से भीतर को लेना, (निमेष) आंख मींचना (उन्मेष) आंख का खोलना (जीवन) प्राण का धारण करना (मन) निश्चय, स्मरण और अहंकार करना (गति) चलना, (इन्द्रिय) सब इन्द्रियों को चलाना (अन्तरविकार) भिन्न-भिन्न क्षुधा, तृष्णा, हर्ष, शोकादि का होना, ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं। इन्हीं से आत्मा की प्रतीति करनी, क्योंकि वह स्थूल नहीं है।

जब तक आत्मा देह में होता है तभी तक ये गुण प्रकाशित रहते हैं और जब शरीर छोड़ कर चला जाता है, तब ये गुण शरीर में नहीं रहते। जिसे होने से जो हों और न होने से न हों, वे गुण उसी के होते हैं। जैसे दीप एवं सूर्यादि के होने से प्रकाशादि का होना और न होने से न होना है, वैसे ही जीव और परमात्मा का विज्ञान गुण द्वारा होता है।

पुरूष बहुत्व :-

जन्मादि व्यवस्थातः पुरूष बहुत्वम् (सांख्य १.१४९)

संसार में देखा जाता है किसी का जन्म हो रहा है और किसी की मृत्यु हो रही है। जन्म-मरणादि अवस्थायें तभी सम्भव है जब अनेक जीवात्मा होंवे। इसमें प्रश्न उठता है कि मुक्ति का साधन करके बहुत सारे लोग मुक्त हो जायेंगे। इसका उत्तर अगले सूत्र में दिया है-

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः (सांख्य १/१५९)

हम देख रहे हैं कि वर्तमान समय में पुरूषों का सर्वथा उच्छेद नहीं है। कोई मरता है तो दूसरा जन्म लेता है। मुक्ति की अवधि समाप्त होने पर आत्मा फिर शरीर धारण करता है। इसलिये सर्वथा उच्छेद का प्रश्न ही नहीं उठता। आवागमन का यह चक्र चलता ही रहता है।

त्रैतवाद :-

ईश्वर : जिस प्रकार घड़े को बनाने में मिट्टी उपादान कारण और कुम्भकार निमित्त कारण है वैसे ही सृष्टि की उत्पत्ति में प्रकृति उपादान कारण और ईश्वर निमित्त कारण है। जीव साधारण निमित्त कारण है। जड़ पदार्थ में यह सामर्थ्य नहीं कि वह स्वयं योजनाबद्ध हो जगत् रूप हो जाये। जीव का भी सामर्थ्य इतना नहीं कि इस विशाल सृष्टि की रचना कर सके। तब केवल ईश्वर ही रह जाता है जो निराकार, सर्व व्यापक, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान होने के कारण परमाणु में भी व्याप्त हो उसे गति प्रदान कर सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय कर रहा है।

ईश्वर के कार्य :-

१. सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करना।

२. सब जीवों को कर्मानुसार यथायोग्य फल देना।

गुण :-ईश्वर सगुण और निगुण दोनों है।

स्वभाव :-ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है।

ईश्वर की सिद्धि :-उदयनाचार्य ने न्याय कुसुमाञ्जलि में ईश्वर की सिद्धि में आठ प्रमाण दिये हैं-

कार्ययोजन धृत्यादेः पद प्रत्ययतः श्रुतेः।
वाक्यात् संख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वकृदव्ययः।।
(न्याय कुसुमाञ्जलि)

१. कार्य-सृष्टि की रचना कार्य है। अतः इसका कारण भी होना चाहिये। बिना कारण के कार्य नहीं हो सकता।

२. आयोजन-सृष्टि रचना के समय परमाणुओं को मिलाने में क्रिया हुई होगी। उस क्रिया का कर्ता होना चाहिये।

३. धृत्यादि-सृष्टि रचना के अनन्तर भी उसका कोई धारण करने वाला होना चाहिये।

४. पद - पद गति का वाचक है। सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्यों को बुना, खेती करना और अन्य लौकिक व्यवहार पहले किसी ने सिखाये होंगे क्योंकि ये नैमित्तिक कर्म हैं।

५. प्रत्यय - वेदों में ज्ञान-प्रदान करने की शक्ति मन्त्रों के माध्यम से किसने दी?

६. श्रुतेः - वेदों का ज्ञान किसने दिया?

७. वाक्य - मनुष्यों को बोलना किसने सिखाया भाषा किसने दी?

८. संख्या- यह किसको सूझा कि दो परमाणुओं से द्वयणु और तीन द्वयणु से त्रसरेणु इत्यादि बनते हैं।

इन प्रमाणों के आधार पर ईश्वर की सिद्धि होती है।

अन्य प्रमाण

१. जीवों के किये हुये कर्म न स्वयं फल दे सकते हैं और न स्वयं जीवन ही फल की व्यवस्था अपने आप कर सकते हैं। अतः ईश्वर की सिद्धि कर्मफल के दाता के रूप में भी है।

२. जगत् में सर्वत्र नियम देखा जाता है अतः उसका नियामक भी होना चाहिये।

उत्पत्ति

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव (ऋ० १०/१२९/७)

जिससे यह सृष्टि प्रकाशित हुई है।

स्थिति

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम् (ऋ० १०/१२१/१)

जिसने पृथिवी से लेके सूर्यपर्यन्त जगत् को धारण किया हुआ है।

प्रलय

नहि ते अग्ने तन्वः क्रूरमानंश मर्त्यः।
कपिर्बभस्ति तेजनम्।।(अथर्व० ६/४९/१)

हे परमेश्वर! मनुष्य तेरे क्रूर स्वरूप को नहीं जानते प्रलय के समय कम्पाने वाले आप प्रकाशमान सूर्य मण्डल को खा जाते हैं जैसे प्रसूता गो अपनी झिल्ली को खा लेती है। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में इस विषय पर लिखा है-

प्रश्न-आप ईश्वर-ईश्वर कहते हो, उसकी सिद्धि किस प्रकार करते हो?

उत्तर-सब प्रत्यक्षादि प्रमाणों से।

प्रश्न-ईश्वर में प्रत्यक्ष प्रमाण कभी नहीं घट सकता?

उत्तर-इन्द्रियों का विषयों के साथ जो सीधा सम्बन्ध होता है उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। अब विचारना चाहिये कि इन्द्रिय और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है, गुणी का नहीं। जैसे शब्द, स्पर्श रूप, रस, गन्ध का ज्ञानेन्द्रियों से प्रत्यक्ष होता है वैसे ही इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष आदि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है। और जब आत्मा किसी गलत कार्य में प्रवृत्त होता है उस समय आत्मा के भीतर बुरे काम करने में भय, शंका, लज्जा तथा अच्छे कर्मों के करने में अभय, निशंकता और आनन्दोत्साह उठता है। यह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है।

और जब जीवात्मा शुद्ध होके शुद्धान्तकरण से युक्त योगी समाधिस्थ होकर आत्मा और परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है। तब उसको उसी समय दोनों (गुण और गुणी) प्रत्यक्ष होते हैं।

'आर्ष-ज्योतिः' को घर बैठे पढ़ने के लिए क्लिक करें- www.pranawanand.org

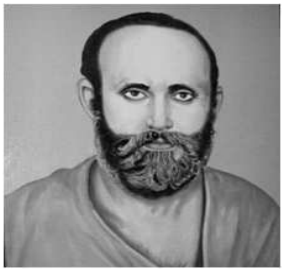

अथ श्री ओमानन्द लहरी

– आचार्य यज्ञवीर व्याकरणाचार्य

सहृदया:! पाठका: पत्रिकाया: अस्मिन् संस्कृतभागे श्री ओमानन्दलहरी नामकं पुस्तकं गतनवम्बरमासात् प्रभृति क्रमश: प्रकाश्यते। श्लोकानामार्यभाषा अपि आचार्य धनञ्जयकृता सहैव प्रकाश्यते येन बोधगम्यता स्यादिति – **कार्यकारिसम्पादक:**

अभास: हरिजनोद्धारप्रयासमेव पुनराचष्टे–

स्त्रियो वा शूद्रा वा पदतलगता: नीचपतिता:,
सदा प्रोचुर्येऽज्ञा: जडमतिजना दूषितमना:।
कुमारीणां शालां वटुपठनशालां रचितवान्,
तदुक्तिं प्रत्युक्त्वा परमपितृरूपो ह्युदतरत्।।३६।।

व्याख्या: ये अज्ञा:=ये मूर्खा:, जड़मतिजना:=मूढधियो नरा:, दूषितमना:=दूषितं मन: येषां ते विकृतमानसा: नरा: सदा=सर्वदा प्रोचु:=अवदन् यत् स्त्रियो वा शूद्रा वा=नार्य: शूद्राश्च पदतलगतानीचपतिता:= अस्मच्चरणतलभूता: नीचा: पतिता: च सन्ति परमपितृरूप:=परमश्चासौ पितृरूपश्च यथा परमपिता परमेश्वर: तद्रुपभूत: स: स्वामीकुमारीणां शालाम्=कन्यानां पाठशालां, वटुपठनशालाम्=छात्राणां पठनाय शालां रचितवान्=स्थापयामास, तेषां तदुक्तिम्=ताम् दुष्टतापूर्णा उक्तिं दुरुक्तिं प्रत्युक्त्वा=शालानिर्माणरूपेण प्रत्याख्याय ह्युदतरत्=निश्चयरुपेणोत्तरं प्रादात्।

आर्यभाषा: जो मूर्ख जड़मति लोग विकृतमानसवृत्ति व्यक्ति थे, वे सदा स्त्रियों और शूद्रों को पाँव की जूती और नीच पतित कहा करते थे। उनके इस कुवचन का खण्डन प्रयोग रूप में कन्या पाठशाला और छात्रों के विद्यालय बनाकर हरिजनों के लिए परम पिता के रूप में खड़े हो कर धूर्त लोगों को करारा उत्तर दिया।।३६।।

आभास: पुन: पूर्वविषयमेव वर्णयन्नाह–

स्वपुत्रीणां शिक्षामुपनयनदीक्षामपि तथा,
स्वपुत्राणां चैव हरिजननरास्ते विदधति।
विवाहादिम्तेषां निगमविधिना पूर्णसमये,
प्रकुर्वन्ते शूद्रा महदुपकृतं तेषु भवता।।३७।।

व्याख्या: ते हरिजनजना:=ते तथा कथिता हरिजनजना: शोषिता: दलिताश्च मानवा: स्वपुत्रीणां स्वपुत्राणां च शिक्षाम्=विद्याप्रदानम्, उपनयनदीक्षाम् चैव=यज्ञोपवीतसंस्कारमेव च ते शूद्रा: पूर्वोक्ता: विदधति=कुर्वन्ति पूर्णसमये=यौवनकाले (बालविवाहं विहाय) तेषाम्=पुत्रीणां पुत्राणां च निगमविधिना= वैदिकरीत्या विवाहादिम्=विवाहसंस्कारादिकं प्रकुर्वन्ते=कुर्वन्ति, तेषु=अस्पृश्येषु हरिजनेषु भवता=स्वामिना ओमानन्देन महत्=अत्यधिकम् उपकृतम्=उपकारं विहितम् इति।।३७।।

आर्यभाषा: वे तथाकथित शोषित दलित हरिजन नर अपने पुत्र पुत्रियों की शिक्षा एवं उपनयनदीक्षा यथा–समय कराते हैं। पूरे समय पर युवावस्था में उनका विवाह संस्कारादि वैदिक विधि से वे हरिजन भाई कराते हैं। यह उन तथाकथित शूद्रों पर, हरिजन भाईयों पर स्वामी ओमानन्द जी का महान् उपकार है।।३७।।

दयानन्द विचार माला

–विकसित आर्य

– जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुन: इस जन्म में तुम को यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा। जब तक हम लोग गृहकर्मों के करने वाले जीते हैं तभी तक तुम को विद्या–ग्रहण और शरीर का बल बढ़ाना चाहिये।

– उन्हीं के सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाडन कभी नहीं करते किन्तु ताड़ना ही करते रहते हैं।

–सत्यार्थ–प्रकाश, द्वितीयसमुल्लास